नियमसार, पृष्ठ १६०, पहला कलश है न?

श्री समयसार की (अमृतचन्दाचार्यदेवकृत आत्मख्याति नामक) टीका में भी (१८७वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:— इसके पहले आ गया। प्रतिक्रमण की व्याख्या है न? **सापराध आत्मा निरन्तर...** सापराधी आत्मा अर्थात्? जो कुछ अशुद्ध परिणाम शुभाशुभभाव और कर्म के कारण से प्राप्त सामग्री को अपनी जो मानता है, वह अशुद्ध आत्मा है, वह अपराधी आत्मा है। आहाहा! वह चोर है, चोर। अपनी चीज़ जो शुद्ध

चिदानन्द है, उसके अतिरिक्त शुभ-अशुभभाव और अघातिकर्म के कारण से प्राप्त सामग्री; घाति के निमित्त से हुआ पुण्य-पाप का भाव, अघाति से प्राप्त बाहर की सामग्री को जो अपनी मानता है, (वह अपराधी है)। आहाहा!

मुमुक्षु : पूरी दुनिया मानती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए कहते हैं कि वह अपराधी प्राणी है, वह गुनहगार है, वह चोर है। ऐसी बात है। आहाहा! अपनी ज्ञान और आनन्द लक्ष्मी छोड़कर, जो अपराध पुण्य-पाप के भाव (होते हैं), वह घाति का निमित्त है। निमित्त है। है तो स्वयं से और बाहर की सामग्री पैसा, स्त्री, पुत्र, अनुकूलता या प्रतिकूलता, वह अघाति का फल है। वे मेरे हैं—ऐसा माननेवाला अपराधी है। आहाहा!

मुमुक्षु : अपने लड़के को लड़का नहीं मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़का कब था? किसका? लड़के का आत्मा लड़के का; लड़के का शरीर शरीर का, जड़ का। आहाहा!

भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मीवाला परमपारिणामिक ज्ञायकभाव को छोड़कर, उससे विरुद्ध चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों या चाहे तो हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, क्रोध, मान, माया के हों, या चाहे तो बाहर की सामग्री अनुकूल-प्रतिकूल हों, परन्तु उसे मेरी मानना, वह अपराधी प्राणी गुनहगार है। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन काम है। प्रतिक्रमण है न? जिससे विमुख होना है, उसमें जाकर अपना मानना है! आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! आत्मा ही अरूपी चिदानन्द भगवन्तस्वरूप है, जिसमें शुभ-अशुभपरिणाम की गन्ध नहीं है। पर की सामग्री तो है ही नहीं परन्तु जिसके शुभ-अशुभभाव, उनकी भी जिसमें गन्ध नहीं है। उसमें तो ज्ञान और आनन्द की गन्ध है। आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु ज्ञानानन्दस्वभावी, आनन्दस्वभावी आत्मा है।

सापराध आत्मा निरन्तर अनन्त (पुद्गलपरमाणुरूप) कर्मों से बँधता है;... अबन्धस्वरूप भगवान आत्मा उन संयोगी चीज़ों और संयोगी भाव को अपना माने, वह निरन्तर नये कर्म से बँधता है। ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : नींद आ जाए, तब तो कुछ काम नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नींद आ जाए, तब सब जड़ का काम करता है। निद्रा वह मेरी, निद्रा में सो गया प्रमाद वह मेरा। वह सब उसमें करे, मानता है। ज्ञानी तो निद्रा में भी जागृत है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! निद्रा, वह प्रमाद है। उस प्रमाद में अपनापन मानकर सोता है, वह तो अपराधी / गुनहगार है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

वह **सापराध आत्मा...** आत्मा सापराध नहीं। आत्मा तो निरपराधी शुद्धचैतन्य (स्वरूप है)। वह अपने स्वरूप को न मानकर, संयोगी भाव और संयोगी चीज़ (को अपनी मानता है)। संयोगी भाव अर्थात् पुण्य और पाप तथा संयोगी चीज़ अर्थात् स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, धन्धा, व्यापार। ये संयोगी भाव और संयोगी चीज़ें हैं। उन्हें असंयोगी ऐसा जो आत्मा अबन्धस्वरूप, (उन) संयोगी चीज़ों को और संयोगी भावों को अपना मानता है, वह अपराधी / गुनहगार / चोर है। आहाहा! समझ में आया? वह अपराधी है। वह निरन्तर... आहाहा!

स्वभाव ज्ञायकस्वरूप चैतन्य, अनाकुल आनन्द का रस चैतन्य चमत्काररस, ज्ञानरस, श्रद्धारस, शान्तरस, वीतरागरस, आनन्दरस, वीर्यरस, स्वच्छतारस – ऐसे अनन्त गुण के रस से भरपूर भगवान वीतरागी मूर्ति प्रभु आत्मा... आहाहा! उसे छोड़कर राग का छोटे में छोटा कण और संयोगी चीज़ को अपनी मानता है, वह गुनहगार / अपराधी है। कहो, समझ में आया? ऐसी बात है। सवेरे बात सूक्ष्म थी, और अभी वापस यह (सूक्ष्म बात आयी)। आहाहा!

एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। एक ओर राम-आतमराम। सच्चिदानन्दस्वरूप पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्ति और पूर्ण वीतरागता से भरपूर भगवान; और एक ओर पुण्य तथा पाप के परिणाम से लेकर संयोगी चीज़। यह आतमराम अपने स्वरूप को भूलकर, जो इसमें नहीं है, जो इसके नहीं है, जिन्हें इसने वास्तव में स्पर्श भी नहीं किया है। (समयसार) ६ वीं गाथा में आ गया है न कि ज्ञायकस्वभाव, चैतन्यस्वभाव, ज्ञायकस्वभाव; ये शुभ-अशुभभाव जो अचेतन, इन अचेतनरूप आत्मा ज्ञायक हुआ ही नहीं। आहाहा! ६ वीं गाथा में आया है। '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' आया था न यह? आया था या नहीं? आहाहा!

एक ओर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु और एक ओर विकल्प से लेकर संयोगी चीज़

—लक्ष्मी का ढ़ेर और स्त्री, पुत्र, परिवार, लड़के-लड़कियाँ, मकान-महल, शुभ और अशुभभाव इनमें से कोई भी चीज़ मेरी है, (ऐसा माननेवाला) ऐसा वह अपराधी आत्मा.. आहाहा! वह गुनहगार आत्मा है। जिसमें से विमुख होना चाहिए, उसमें से विमुख न होकर उसमें जुड़ जाता है। आहाहा! समझ में आया? यशपालजी! ऐसी बात है। जिसमें से विमुख होना है अर्थात् जिसमें यह है ही नहीं। अपने में यह है नहीं, इसमें स्वयं नहीं। राग में आत्मा नहीं और आत्मा में राग नहीं। संयोगी चीज़ में अबन्धस्वरूप भगवान नहीं... आहाहा! और अबन्धस्वरूपी में संयोगी चीज़ नहीं। आहाहा! यह तो शान्ति का मार्ग है, भाई!

ऐसा जो अपराधी **निरन्तर अनन्त (पुद्गलपरमाणुरूप) कर्मों से बँधता है; निरपराध आत्मा बन्धन को कदापि स्पर्श ही नहीं करता।** एक भाषा ली है। अज्ञानी कुछ बन्धन को स्पर्श करता है, ऐसा नहीं। अज्ञानी, बन्धन जड़ है, उसे स्पर्श करता है—ऐसा नहीं परन्तु उसमें स्वयं को मानता है, ऐसी मान्यता में खड़ा है। स्पर्श करता है अर्थात् कुछ छूता है, ऐसा कुछ नहीं। आहाहा! अज्ञानी कर्म को स्पर्श करता है अर्थात् कुछ कर्म को छूता है, ऐसा नहीं है। अज्ञानी अपने स्वरूप को नहीं जानकर, अज्ञान में अनन्त कर्म के सम्बन्ध में जुड़ता है, उसे स्पर्श करता है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

ज्ञानी निरपराधी आत्मा... आहाहा! मैं तो एक ज्ञायक चैतन्यस्वरूप आनन्द और शान्ति का सागर नित्यानन्द प्रभु ध्रुव, वह मेरा स्वभाव और वह मैं। मेरा स्वभाव और यह मैं, यह भी भेद है। आहाहा! मैं शुद्ध चिदानन्द ज्ञानानन्दस्वरूप, अकषाय वीतरागी स्वरूप ऐसा जो आत्मा, उसे जो माननेवाला है, वह निरपराधी है। आहाहा! **निरपराध आत्मा बन्धन को कदापि स्पर्श ही नहीं करता।** तब वह अज्ञानी बन्ध को स्पर्श करता है, यह भाषा है। बन्धन को स्पर्श नहीं करता। बन्धन उसे साथ में आता है। आत्मा शुद्ध चिदानन्द-स्वरूप के साथ कर्म के रजकण आते हैं, उससे बँधता है, स्पर्श करता है—ऐसा कहने में आता है। बाकी एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श करे, इस बात का तो तीसरी गाथा में निषेध किया है। समझ में आया? आहाहा!

यह हाथ है, वह इस वस्त्र को स्पर्श करता है? (कहते हैं) कि नहीं। आहाहा! एक चीज़ (और) दूसरी चीज़ के बीच अत्यन्त अभावस्वभावरूप भाव है। आहाहा! वह दूसरे

को कैसे स्पर्श करे ? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को और दूसरे द्रव्य के गुण को या दूसरे द्रव्य की पर्याय को कभी स्पर्श नहीं करता, चुम्बन नहीं करता, स्पर्श नहीं करता। आहाहा! प्रत्येक द्रव्य अपने गुण और पर्याय को चुम्बन, स्पर्श करता है, छूता है। भले विभावरूप हो या स्वभावरूप हो परन्तु वह परिणमता है। यह आया न ? (समयसार) ४०४ गाथा। प्रयोगि। चाहे तो आत्मा प्रयोगि कर्म के निमित्त से होनेवाला विकार हो या स्वभाव हो, परन्तु उससे परद्रव्य को वह ग्रहण कर ही नहीं सकता। आहाहा! वह परद्रव्य को ग्रहण नहीं करता।

यहाँ शब्द समझाना है, इसलिए ऐसा कहा कि **निरपराध आत्मा...** तब सापराध आत्मा स्पर्श करता था ? इसका अर्थ कि बँधता था। समझ में आया ? आहाहा! तथापि वे दोनों भिन्न-भिन्न रहते थे। कर्मपने का बन्धन जड़रूप और चैतन्य का चैतन्यरूप, परन्तु उसमें निमित्त-निमित्त सम्बन्धरूप से था। आहाहा! उसे अपना माननेवाला अपराधी अनन्त परमाणुओं से बँधता है। बँधता है। भाषा थोड़ी, भाव बहुत गम्भीर हैं। आहाहा! बहुत निवृत्ति चाहिए, भाई! इसे निवृत्ति में अन्दर में भेदज्ञान करना चाहिए। भेदज्ञान है ही, भेदरूप है ही परन्तु इसने माना नहीं है। आहाहा!

ऐसा जो भेदज्ञान (वह) जिसे हुआ, वह **निरपराध आत्मा बन्धन को कदापि स्पर्श ही नहीं करता।** आहाहा! **'जातु'** शब्द है न ? जातु.. जातु.. शब्द अर्थात् उसका कदापि। किसी काल में भी निरपराधी आत्मा, चैतन्यज्ञान और आनन्दस्वरूप मैं हूँ, ऐसा अनुभव करनेवाला, ऐसा माननेवाला, ऐसा जाननेवाला, उसमें रहनेवाला, वह कदापि उस कर्म को स्पर्श नहीं करता अर्थात् उसे कर्म नहीं बँधते। कर्म को स्पर्श नहीं करता अर्थात् कर्म उसे नहीं बँधते। आहाहा! सामने पुस्तक है न ? आहाहा! और परम सत्य बात गुप्त हो गयी है और अन्तर की बातें छोड़कर बाहर की ऊपर-ऊपर की जंजाल में पड़ाव डाला है। बाहर में पड़ाव डाला है। भगवान का पड़ाव तो अन्दर में है। आहाहा! उसे राग और राग के फलरूप से प्रतिकूल या अनुकूल संयोग (प्राप्त होते हैं)। आहाहा! उनसे रहित मैं हूँ। ऐसा **निरपराध आत्मा बन्धन को कदापि स्पर्श ही नहीं करता।** अज्ञानी स्पर्श नहीं करता। अज्ञानी के साथ में होता है परन्तु होता है, उसके बदले स्पर्श करता है, ऐसा कहा है। यहाँ स्पर्श नहीं करता, ऐसा कहा है। आहाहा!

जो सापराध आत्मा है, वह तो नियम से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ... अब कहते हैं कि क्या किया ? अपराधी का अर्थ अब क्या करना ? सापराधी आत्मा बँधता है, ऐसा कहा, तो वह सापराधी अर्थात् क्या ? सापराधी अर्थात् क्या ? कि **नियम से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ...** वह सापराधी। आहाहा ! यह सब चमक सब पैसा, स्त्री, पुत्र, बड़ा मकान... आहाहा ! और दुकान की गद्दी पर बैठा हो, कपड़े का धन्धा हो, दो-पाँच लाख, दस लाख का कपड़ा हो, हमेशा दो-चार-पाँच हजार की आमदनी होती हो और दो-पाँच-पच्चीस नौकर हों, धमाल चलती हो। अब उसमें ऐसा मानना कि यह मेरा नहीं है।

मुमुक्षु : चक्रवर्ती....

पूज्य गुरुदेवश्री : चक्रवर्ती मानता है कि मैं तो यहाँ हूँ। कोई मेरा नहीं है। राग का कण मेरा नहीं है तो स्त्री, पुत्र, फिर मेरे कहाँ से आये ? आहाहा ! जिसका आत्मा भिन्न, जिसके शरीर के रजकण भिन्न, (वे मेरे कहाँ से हुए ?) आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि **निरपराध आत्मा...** पहले **सापराध आत्मा...** अर्थात् क्या ? ऐसा कहते हैं। वह **नियम से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ...** शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसे पुण्य और पाप के भाववाला और संयोगी चीज़वाला मानना, वह अशुद्ध सेवन करता है, वह अशुद्धता का सेवन करता है। आहाहा ! यह सब पैसा-वैसा दो-पाँच करोड़ हो, बड़ा मकान पच्चीस लाख का-पचास लाख का हो, लो ! उसे क्या करना ? तू करे क्या ? वे तो हैं वह है। वे उनमें हैं। तुझमें कहाँ थे ? यह बड़ा छब्बीस लाख का मकान है, लो, छब्बीस लाख। यह तो साढ़े पाँच वर्ष पहले की बात है। अब तो अभी वापस महँगा हो गया, वह तो उसके परमाणु जगत की चीज़ है, वह क्षेत्रान्तर होकर उसे जो स्थान मिला है, वहाँ रहे हैं। आहाहा !

मुमुक्षु : आप विराजमान थे...

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। रामजीभाई प्रमुख थे, इसलिए हुआ है। ऐसा भी नहीं है। वजुभाई.. क्या कहलाते हैं ? इंजीनियर थे, इसलिए हुआ है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा !

मुमुक्षु : आप विराजमान न होते तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसके काल में, उस क्षेत्र में जो आनेवाला हो, वह आता है। उसमें इसके कारण से आता है, यह बात ही कहाँ है ? इस परमाणु का जिस क्षेत्र का जो समय आने का है, उस समय में वहाँ आता है।

मुमुक्षु : उसका कोई निमित्त होवे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ निमित्त होवे अर्थात् उसका अर्थ यह कि उससे कुछ नहीं। निमित्त का अर्थ ही यह है कि निमित्त से कुछ नहीं होता। यहाँ होता है, तब वह चीज़ है, उसे निमित्त कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। धर्म के नाम से वे व्रत, तप पालन करें, वह भक्ति-पूजा करे, वह वस्त्र छोड़कर नग्न हो, प्रतिमा धारण करे। अरे, भगवान! परन्तु तू कौन है, उस चीज़ को जाने बिना तुझे किसका त्याग ? जिसे अभी मिथ्यात्व का त्याग नहीं, वहाँ बाहर का त्याग ? बाहर का त्याग तो त्रिकाल है। बाह्य का त्याग (तो है ही) त्योगापादानशून्यत्वशक्ति (आत्मा में त्रिकाल है)। पर का ग्रहण और पर के त्याग से तो आत्मा शून्य है, त्रिकाल शून्य है। आहाहा! जो अन्दर मिथ्यात्व का अपराध है, उसे छोड़ना चाहिए। वह स्वभाव के आश्रय से छूटता है, इस बात की तो खबर नहीं होती। छोटाभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ तो हाँ करनी पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार करना कि एक तत्त्व है। यह अंगुली है, इसका अस्तित्व है। इसमें उसका नास्तित्व है। इसका उसमें नास्तित्व है, तब इसका अस्तित्व टिक रहा है। इसके कारण वह हो तो टिक सके नहीं। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने से है और पर से नहीं है, तब तो स्व-रूप से टिक रहा है। आहाहा! ऐसा उपदेश और ऐसी शैली अब। सोनगढ़ के नाम से एकान्त है, (ऐसी) पुकार करते हैं। एकान्त है, निश्चयाभास है। बापू! जैसा है, वैसा है, भाई! आहाहा! बापू! प्रभु का मार्ग अलग है, भाई!

सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर विराजता है, महाप्रभु (विराजता है), उसे पामर ऐसे राग और पामर ऐसी परचीज़ को अपनी प्रभुता में रचना, (वह कलंक है)। आहाहा! अनन्त-अनन्त प्रभुता से भरपूर भगवान, अनन्त प्रभुता, ज्ञानप्रभुता, ज्ञान अनन्त प्रभुता, दर्शन अनन्त प्रभुता, आनन्द अनन्त प्रभुता, जीवत्वशक्ति अनन्त प्रभुता, चिति, दर्शि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, स्वच्छत्व, प्रकाश, असंकुचितविकासत्व,

अकार्यकारण। पर का कारण भी नहीं और पर का कार्य भी नहीं, ऐसी अकारण (कार्य) अनन्त शक्ति से भरपूर भगवान तू है। यह क्या कहा?

तेरे अतिरिक्त कोई भी राग और परचीज़ का तू कारण भी नहीं और वह तेरा कार्य नहीं। ऐसा ही तेरा अकार्यकारण नाम का अनादि-अनन्त गुण उपादान शुद्धरूप से पड़ा है। आहाहा! इसमें कठिन पड़ता है। उसमें फिर युवा शरीर हो, उसमें पाँच-पच्चीस लाख, दो-पाँच करोड़ रुपये मिले हों, उसमें नौकर, लोग, कुटुम्बी, भाई-बन्धु सब ठीक मिले हों। फिर मैं... यह मैं... मैं... मैं... हो जाता है। आहाहा! यह मैं... यह मैं... मैं वह तू और तू वह मैं। आहाहा! (ऐसा जो हो जाता है)। यह यहाँ कहते हैं।

नियम से अपराधी जीव **अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ...** कर्म के कारण सेवन करता हुआ, ऐसा नहीं कहा। यह क्या कहा? सापराधी आत्मा, वह तो निश्चय से **नियम से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ..** कर्म का जोर है, इसलिए अशुद्ध सेवन करता है, यह बात यहाँ नहीं है और ऐसा है नहीं। आहाहा! कठोर निकाचित बन्ध, निद्धतकर्म हो कठोर, उसके कारण इसे अशुद्धता सेवन करनी पड़ती है। नहीं, नहीं। उस तेरी भूल के कारण अशुद्ध सेवन करता है, वह तेरा विपरीत पुरुषार्थ है। कर्म का कुछ कारण नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! आचार्यों ने भी थोड़े शब्दों में कितना भरा है! बहुत-बहुत भरा है।

सापराध आत्मा है, वह तो नियम से... नियम से-वास्तव में **अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ...** मैं तो दया का पालनेवाला हूँ, रागवाला हूँ, प्रशस्तरागवाला हूँ, शुभराग तो मेरा है न? आहाहा! समयसार में १४८ (कर्म) प्रकृति ली है न? १४८ प्रकृति। वहाँ तो ऐसा कहा, मैं तीर्थंकर नामकर्म के फल को नहीं भोगता। आहाहा! प्रकृति का फल संयोग। प्रकृति भिन्न, जो शुभभाव बँधा वह भिन्न। प्रकृति बँधी वह भिन्न, उसका फल यह संयोग समवसरण, वह सब भिन्न है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा मानता है, मैं तीर्थंकर प्रकृति के फल को भी नहीं भोगता। आहाहा!

मुमुक्षु : उदय में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आवे, अपने आप आकर खिर जाता है, वह उसमें-जड़ में (होता है)। आत्मा को कुछ नहीं मिलता। आहाहा! ऐसा काम है। फिर लोग ऐसा ही कहे

न (कि) सोनगढ़वालों ने... वह तो निश्चय की बातें... निश्चय की बातें (करते हैं), व्यवहार की तो बातें करते नहीं... परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य; व्यवहार अर्थात् उपचार और आरोप से कथन। छोटाभाई! ऐसा है, बापू! आहाहा!

प्रभु! तेरी प्रभुता अन्दर बड़ी है, भगवान! उस बड़े को छोटा मानना, उस बड़े को राग के अपराधवाला और पर के संयोगवाला मानना, वह पामर माना, तूने प्रभु को पामर माना। आहाहा! बाहर की महिमा से मैं बड़ा हूँ, ऐसा माना, उसने आत्मा की हीन दशा कर डाली। उसने आत्मा की महिमा को मार डाला। आहाहा! बाहर की कुछ पुण्य की प्रकृति, शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार, इज्जत, कीर्ति। साधु होवे तो इज्जत कीर्ति बाहर में बहुत फैलती है, लो न! परन्तु उन सब चीज़ों में मैं हूँ और वे मुझे हैं... मुझे हैं। आहाहा! (ऐसा मानता है, वह) गुनहगार है। आहाहा!

यह अमृतचन्द्राचार्य का समयसार का कलश है। **नियम से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ...** देखा! निश्चय से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ। आहाहा! **सापराध है; निरपराध आत्मा...** आहाहा! जो राग और राग के फल की प्रकृति और प्रकृति का फल संयोग, तीन से तो रहित मेरी चीज़ त्रिकाल है। ज्ञायकस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, चैतन्यशक्ति का रस आनन्द का रस, शान्त का रस, वीतरागी रस, ध्रुव रस, वह आत्मा हूँ। आहाहा! ऐसा जो **निरपराध आत्मा तो भलीभाँति...** भलीभाँति अर्थात्? मात्र धारणा में रखा कि आत्मा ऐसा है, वैसा है – ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? **भलीभाँति शुद्ध आत्मा का सेवन करनेवाला होता है।** आहाहा! शुद्ध हूँ, ऐसा जो धार रखा है, वह नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप जैसा है, उस प्रकार से भलीभाँति सेवन करता हुआ, उस शुद्ध को सेवन करता हुआ, उस शुद्ध को आराधन करता हुआ, उस शुद्ध में एकाकार होता हुआ... आहाहा! उस **शुद्ध आत्मा का सेवन करनेवाला होता है।** लो! आहाहा! वह भी व्यवहार से है। शुद्ध आत्मा और उसका सेवन करनेवाला। समझाना है न? आहाहा! पवित्र भगवान शुद्ध चिदानन्द प्रभु त्रिकाल अतीन्द्रिय आनन्द के रस से पूर्ण भरा हुआ, त्रिकाल ज्ञान और शान्ति के, वीतराग के रस से पूर्ण भरा हुआ, उसे सेवन करता हुआ अर्थात् उसमें एकाग्र होता हुआ। आहाहा! वह निरपराधी है, वह गुनहगार नहीं है।

आहाहा! वह गुनाह से रहित है। समझ में आये उतना समझना, भाई! यह मार्ग तो, बापू! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव... आहाहा! जिनके समक्ष सौ इन्द्र.. आहाहा! पिल्ले / कुत्ते के बच्चे की भाँति सुनने बैठते हैं। वह चीज़ कैसी होगी? बापू! आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ मैं निरपराधी आत्मा हूँ, मुझमें राग का कण नहीं, कर्म का संयोग नहीं, कर्म से फली हुई-मिली हुई चीज़ / सामग्री वह तो उसकी उसमें उसे है। आहाहा! उसे यहाँ निरपराधी आत्मा (कहते हैं)। समझ में आया? आहाहा! ऐसा स्वरूप है, उसमें वाद-विवाद किसके साथ करना? झगड़ा, वाद करो। खानिया चर्चा करो, उसे झूठी सिद्ध करते हैं। उसका अन्तिम उत्तर हमने दिया नहीं। अन्तिम तुम्हारा उत्तर रह गया। यह फूलचन्दजी के साथ किया है। आहाहा! अरे प्रभु! तेरी प्रभुता को, पर के आधीन प्रभुता को प्रगटाना, ऐसा मानना, वह प्रभुता को पामर मानकर अपराधी होता है, भाई! आहाहा! दुनिया तो प्रसन्न होगी। ऐसा करूँ, शुभभाव करके एक-दूसरे को मदद करना, सहायता करना, वह पामर है, इसलिए उसे अच्छा लगता है। आहाहा! अपने को देने का, मदद करने का करते हैं। गरीब लोग हैं तो पैसेवाले को ऐसा कहे मदद करो। प्रसन्न होता है। अरे, भगवान! बापू! वह प्रसन्न होने का स्थान नहीं है। आहाहा!

शुद्ध आत्मा का सेवन करनेवाला होता है। अर्थात् शुद्ध का अनुभव करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह दया, दान, व्रत, शुभव्यवहाररत्नत्रय का सेवन करनेवाला वह नहीं है। आहाहा! अब, उस व्यवहाररत्नत्रय से निश्चयरत्नत्रय हो.. आहाहा! जो अपराध है, उससे निरपराध हो, बापू! चर्चा से पार नहीं आता। शास्त्र में निमित्त को हस्तावलम्ब देखकर बातें बहुत की हैं परन्तु उससे क्या? वह तो ज्ञान कराया है। आहाहा! निमित्त का ज्ञान कराया है।

भगवन्त! तू तो एक अतीन्द्रिय आनन्द का.. आहाहा! जैसे बर्फ की बड़ी शिला होती है... बर्फ की शिला.. वैसे ही अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय वीतरागता की अरूपी स्वभावी शिला है। आहाहा! वह मुम्बई में आता है न? पचास-पचास मण की शिला ट्रक में निकलती है, ट्रक में देखते हैं। पचास-पचास मण की शीतल शिला होती है। वह तो रूपी है, वजनदार है। यह अरूपी है, तोल (वजन) रहित चीज़ है। वजनरहित चीज़ की तुलना की नहीं जा सकती, ऐसी वह चीज़ है। आहाहा!

बेहद ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता की शक्ति, संख्या का तो पार नहीं होता परन्तु एक-एक शक्ति की सामर्थ्य का पार नहीं होता। ऐसा जो भगवान आत्मा, अपने को सेवन करता है, वह निरपराधी है। भगवान को नहीं। सेव्य-सेवक मैं। मैं सेवक और भगवान सेवन करनेयोग्य, यह यहाँ नहीं है। आहाहा! ऐसा आया या नहीं इसमें? आत्मा का सेवन करनेवाला हो, ऐसा आया न? भगवान का सेवन करनेवाला हो, ऐसा आया? सेवन करनेयोग्य भी मैं और सेवा करनेवाला भी मैं। सेवा करनेवाला मैं और सेवा के योग्य भगवान, यह तो व्यवहार हो गया। यह तो विकल्प है, राग है। आहाहा! बहुत कठिन बातें हैं, बापू! इसमें चारों ओर फँस गया हो, उसमें से ऐसी बातें करना एकदम... पृथक्... पृथक्... पृथक्... पृथक्... पृथक्... पृथक्... पृथक् है, वह पृथक् हो। आहाहा! यह श्लोक पूरा हुआ।

श्लोक-११२

और (इस ८४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(मालिनी)

अपगतपरमात्मध्यानसम्भावनात्मा,
नियतमिह भवार्तः सापराधः स्मृतः सः।
अनवरत-मखण्डाद्वैतचिद्भावयुक्तो,
भवति निरपराधः कर्म-सन्न्यास-दक्षः ।।११२।।

(हरिगीतिका)

परमात्मा के ध्यान की सम्भावना से रहित जो।
वह भवदुःखी माना गया है सापराधी नियम से॥
जावे युक्त एक अखण्ड चेतन भाव से है अनवरत।
जो निरपराधी जीव है वह दक्ष कर्म सन्यास में॥११२॥

[श्लोकार्थः] इस लोक में जो परमात्मध्यान की सम्भावना रहित है (अर्थात् जो जीव परमात्मा के ध्यानरूप परिणमन से रहित है—परमात्मध्यानरूप परिणमित नहीं हुआ है) वह भवार्त जीव नियम से सापराध माना गया है; जो जीव निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है, वह कर्मसंन्यासदक्ष (-कर्मत्याग में निपुण) जीव निरपराध है ॥११२॥

श्लोक-११२ पर प्रवचन

और (इस ८४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):— वह श्लोक तो अमृतचन्द्राचार्य का था। अब स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव इस नियमसार की टीका करनेवाले, वे स्वयं श्लोक कहते हैं।

अपगतपरमात्मध्यानसम्भावनात्मा,
नियतमिह भवार्तः सापराधः स्मृतः सः।
अनवरत-मखण्डाद्वैतचिद्भावयुक्तो,
भवति निरपराधः कर्म-सन्न्यास-दक्षः ।।११२।।

***श्लोकार्थः*—इस लोक में जो परमात्मध्यान की सम्भावना रहित है...** आहाहा! परमात्मा-परमात्मा-परमस्वरूप। परमात्मा अर्थात् परमस्वरूप। जो परम ज्ञायकभाव, परमपारिणामिकस्वभावभाव, अरूपी परन्तु परमस्वभाव- ऐसा जो परम आत्म परमस्वभाव, वह परमात्मध्यान। उसका जिसे ध्यान है। उस परमस्वरूप की जिसे एकाग्रता है, उसका जिसे सेवन है, उसमें जिसकी एकाग्रता है, ऐसी **परमात्मध्यान की सम्भावना रहित है...** वह रहित है। ऐसे ध्यान की सम्भावना से रहित है। जैसी अन्दर एकाग्रता (चाहिए), उससे रहित राग और संयोग में आ गया है। आहाहा!

जो जीव परमात्मा के ध्यानरूप परिणमन से रहित है... परमानन्द का नाथ प्रभु, उससे रहित। राग के कण में, एक छोटे में छोटा कण, गुण-गुणी के भेद का विकल्प, उसमें भी जो ध्यान में लीन / एकाकार है। आहाहा! **(अर्थात् जो जीव परमात्मा के ध्यानरूप परिणमन से रहित है...)** राग से ध्यान में एकाकार है, वह परमात्मा के ध्यान

से रहित है। आहाहा! जिसके ध्येय में शुभराग आदि है, उस शुभराग के ध्यान में मस्त है, वह परमात्मा के ध्यान से रहित है। आहाहा!

इस लोक में जो जीव परमात्मध्यान की सम्भावना रहित है... सम्भावना अर्थात् अनुभव, उसकी एकाग्रता। **(अर्थात् जो जीव परमात्मा के ध्यानरूप परिणमन से रहित है—परमात्मध्यानरूप परिणमित नहीं हुआ है)...** आहाहा! परमस्वरूप चिद्घन आनन्द का सागर प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र आत्मा है, उसके ध्यान से जो रहित है, जिसे उसका परिणमन नहीं है और राग तथा पुण्यादि का परिणमन है, **वह भवार्त जीव...** वह भव में भ्रमण करनेवाला जीव। आहाहा! एक-एक श्लोक और एक-एक कलश...!

भवार्त... भव में पीड़ित। आहाहा! परमात्मा के ध्यान से रहित है, वह भव में पीड़ित है। चाहे तो वह शुभराग हो, वह भव / संसार है। आहाहा! वह शुद्धात्मध्यान से रहित है। वह भवार्त अर्थात् भव—संसार की पीड़ा में पड़ा है। चाहे तो भले शुभराग में हो, (वह) भवार्त की पीड़ा में है। **नियम से सापराध माना गया है;...** वह निश्चय से निरपराधी नहीं परन्तु सापराधी माना गया है। कहो, अब भगवान का - परमात्मा का ध्यान करे। अरिहन्तदेव त्रिलोकनाथ (का ध्यान करे), ज्ञानार्णव में आता है। पहले ऐसे करे... पहले ऐसे करे, फिर छोड़कर अन्दर जाए। आहाहा!

परमात्मध्यानरूप परिणमित नहीं हुआ है... अर्थात् दया, दान के रागादि या शुभ-अशुभभावरूप परिणमित हुआ है। आहाहा! **वह भवार्त जीव...** भव से पीड़ित, भव में पीड़ित जीव **नियम से सापराध माना गया है;...** निश्चय से उसे अपराधी कहा गया है। आहाहा! यहाँ तो अभी शुभभाव करे, ऐसा करे, त्याग करे तो... ओहोहो! तुमने बहुत अच्छा काम किया। सदाचार किया-सदाचार। वह असदाचार है। शुभभाव, वह असदाचार है। शुद्धस्वभाव की शुद्धता, वह सदाचार है। सत्स्वरूप जो भगवान पूर्णानन्द, उसकी एकाग्रता, वह सदाचार है। आहाहा!

बात-बात में अन्तर है। 'आनन्द कहे परमानन्दा, माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मले ने एक त्र्याम्बियाना तेर' भगवान कहते हैं कि अनादि संसार के प्राणी से बात-बात में अन्तर है, प्रभु! आहाहा! कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! दृष्टान्त देते हैं। इस जगह ऐसा किया, देखो! इसने ऐसा किया। तीर्थंकरगोत्र बाँधा, देखो! इससे इसने संसार

तोड़ डाला। (वास्तव में) था शुभभाव। तीर्थंकरगोत्र बाँधा और उससे केवलज्ञान होगा, (ऐसा अज्ञानी मानता है)। अरे, भाई! वह शुभभाव है, वह अधर्म था। अधर्म से तीर्थंकर प्रकृति बँधती है, धर्म से नहीं बँधती। आहाहा! धर्मी जीव वह भाव आता है, उसे जानता है, अपना नहीं मानता। तीर्थंकर प्रकृति बँधी; इसलिए बहुत अच्छा हुआ.. आहाहा! ऐसा नहीं मानता। यशपालजी! ऐसी बातें हैं, भगवान! आहाहा! तेरी महिमा की क्या बात करना! कहते हैं। आहाहा! वचन से पार, विकल्प से पार, ऐसा तेरा नाथ परमात्मस्वरूप अन्दर विराजता है। प्रभु! तू स्वयं ही परमेश्वर है। आहाहा!

जो जीव निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है,... अब सुलटी बात है। **जो जीव...** उसमें निरन्तर लिया था। आहाहा! आहाहा! उसमें निरन्तर आया था। पहले श्लोक में। **सापराध आत्मा निरन्तर अनन्त (पुद्गलपरमाणुरूप) कर्मों से बँधता है;...** पहले श्लोक में आया था। **इस लोक में जो जीव परमात्मध्यान की सम्भावना रहित है (अर्थात् जो जीव परमात्मा के ध्यानरूप परिणमन से रहित है—परमात्मध्यानरूप परिणमित नहीं हुआ है) वह भवार्त जीव नियम से सापराध माना गया है; जो जीव निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है,...** आहाहा! जिसकी दृष्टि में निरन्तर अखण्ड; पर्याय का भेद भी नहीं, अद्वैत-एकरूप **चैतन्यभाव से युक्त है,...** एकरूप चैतन्यभाव से युक्त है। आहाहा!

अन्दर भगवान आत्मा देह से, कर्म से, राग से तो भिन्न है, परन्तु जिसमें पर्याय का भी भेद नहीं... आहाहा! ऐसा **निरन्तर अखण्ड-अद्वैत...** निरन्तर सत्.. सत्.. सत्.. सत्.. सत्स्वरूप निरन्तर है... है... है... पूर्णानन्द का नाथ। पूर्णस्वभाव से भरपूर निरन्तर अखण्ड है, अद्वैत है। दो नहीं। द्रव्य और पर्याय दो नहीं। द्रव्यरूप अखण्ड अद्वैत है। आहाहा! समझ में आया? ३२० गाथा में द्रव्य और पर्याय का जोड़ा कहा है, वह तो बतलाया है। यहाँ तो आश्रय करनेयोग्य (द्रव्य बतलाया है)। आश्रय करती है पर्याय, परन्तु वह पर्याय किसका आश्रय करती है? कि निरन्तर अखण्ड चैतन्यभाव से युक्त है। आहाहा! पर्याय में निरन्तर अखण्ड चैतन्यभाव से युक्त है। ध्रुव तो ध्रुव है अखण्ड, परन्तु पर्याय को वहाँ झुकाया है। आहाहा!

जो शुभ और अशुभभाव में झुकी हुई अपराधी थी... आहाहा! उस पर्याय को,

निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है,... वापस **निरन्तर अखण्ड-अद्वैत...** वह तो परमाणु में भी लागू पड़ता है परन्तु यह प्रभु स्वयं **निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है,...** चैतन्यभाव, ज्ञायकभाव, जाणकस्वभाव, सत्व जिसका ज्ञायक। सत् का सत्व जिसका ज्ञायक सत्व, ध्रुव सत्व। आहाहा! ऐसे चैतन्यभाव से सहित है! **वह कर्मसंन्यासदक्ष...** लो! संन्यास आया। त्याग (आया)। वह **(-कर्मत्याग में निपुण) कर्मसंन्यासदक्ष..** वह कर्म के त्याग में दक्ष अर्थात् निपुण है। आहाहा!

जो जीव निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है,... पर्याय अखण्ड चैतन्यभाव की ओर झुकी हुई है। झुकी हुई है तो पर्याय, परन्तु कहाँ? कि अखण्ड अद्वैत चैतन्यभाव (की ओर)। आहाहा! उससे जो पर्याय में युक्त है। आहाहा! अब ऐसा उपदेश लोगों को किस प्रकार का लगे? आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु! तू वस्तु है या नहीं? वस्तु है या नहीं? तत्त्व है या नहीं? तो तत्त्व है, वह आदि रहित है या शुरुआतवाला है? अनादि है। और है, उसका नाश हो, ऐसा वह तत्त्व है? वह है, वह उस स्वभाववाला तत्त्व है या स्वभावरहित है? आहाहा! तो तत्त्व है वह स्वभाव है, तत्त्वस्वभाववान है। उसका स्वभाव चैतन्यभावस्वभाव। **अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव...** स्वभाव। आहाहा! दया, दान के विकल्प से तो रहित, परन्तु पर्याय से रहित। पर्याय की दृष्टि द्रव्य पर पड़ी है, कहते हैं। आहाहा! यह किस प्रकार का उपदेश? छोटाभाई! वहाँ दिगम्बर सम्प्रदाय में सुना था? नहीं? दिगम्बर सम्प्रदाय में जन्मे हैं। ऐसी बातें बहुत (सूक्ष्म हैं), बापू! आहाहा!

निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव... भाववान प्रभु का चैतन्यभाव। आहाहा! **निरन्तर अखण्ड-अद्वैत...** वे अद्वैत कहते हैं, वह नहीं, हों! वेदान्त सर्व व्यापक आत्मा कहता है, सर्व व्यापक एक आत्मा, वह अद्वैत नहीं। वह तो यह आत्मा अद्वैत अर्थात् एकरूप, ऐसा। ऐसे-ऐसे अनन्त आत्माएँ हैं। वेदान्त तो ऐसा कहता है, व्यापक एक ही आत्मा है—सर्व-व्यापक है। वह निश्चयाभास है। यहाँ तो निरन्तर अखण्ड चैतन्य एक। अद्वैत कहा न? अद्वैत अर्थात् स्वयं एक है। एक चैतन्यभाव से युक्त है। आहाहा!

वह कर्मसंन्यासदक्ष... है। वह जीव ऐसी जिसकी दृष्टि हुई है, ऐसे चैतन्यभाव पर जिसकी दृष्टि पड़ी है, उसमें जिसका दक्षपना जिसके स्वरूप में है, वह कर्मसंन्यास में दक्ष

है। वह कर्म के त्याग में चतुर है। **(-कर्मत्याग में निपुण)...** है। आहाहा! **निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है,...** उसमें जो निपुण है, वह कर्मसंन्यासदक्ष में निपुण है। समझ में आया? आहाहा! जो **निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त (सहित) है,...** आहाहा! वह कर्मसंन्यास, कर्म के त्याग में चतुर है। आहाहा! वह (सापराधी जीव) कर्म राग आदि ग्रहण में चतुर है और रागसहित ही आत्मा है, ऐसा मानता है। यह (निरपराधी) तो निरन्तर अखण्ड चैतन्यभावयुक्त कर्मसंन्यासदक्ष—रागादि कर्म के त्याग में चतुर है। आहाहा! इस अपेक्षा से समझाना है न? **(-कर्मत्याग में निपुण) जीव निरपराध है।** उस जीव को निरपराधी माना गया है। आहाहा! ऐसी व्याख्या है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)